International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 957-959

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 957-959
www.allresearchjournal.com
Received: 14-11-2016
Accepted: 26-12-2016

संगीता कुमारी झा
शोधार्थी, विश्वविद्यालय, हिन्दी–विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
संगीता कुमारी झा
शोधार्थी, विश्वविद्यालय, हिन्दी–विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

तुलसीदास की रचनाओं में छन्द और संगीत

संगीता कुमारी झा

सारांश
गोस्वामी तुलसी दास वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, होमर, शेक्सपेय आदि के अतर के विश्वकवि हैं इनके प्रत्येक रचना में छन्द और संगीतात्मकता का विशेष ध्यान रखा गया है। मुक्तक काव्य की संगीतात्मकता आत्मामिव्यंजना, भावन्विति, सहज अन्तः प्रेरणा शैलीगत स्वभाविकता, भाषा की सुकुमारता आदि तत्वों का समावेश कर तुलसीदास काव्य की आत्मा का उत्कर्ष भी किया है और शरीर का श्रृंगार भी। रामचरित मानस के संस्कृत श्लोक को छोड़कर शेष संपूर्ण महाकाव्य में दोहा–चौपाई और सोरठा में ही रचना की गई है, यद्यपि भावधारा और प्रसंग के अनुसार लय–गति–ताल का अनुशरण करते हुए हरिगीतिका आदि छंदो के उपयोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। गोस्वामी की अन्य प्रमुख कृतियों में कवितावली और हनुमान बाहुकर के प्रिय छंद कवित्व और सवैया है। ''रामाजा प्रश्न'' और 'दोहावली' में दोहा छन्द ''पार्वती मंगल'' और जानकी मंगला सोहर और हरिगीतिका छन्द का उपयोग दिखाई देता है। विनय पत्रिका गीतावली और ''कृष्ण गीतावली'' में प्रगीत और मुक्तक के रचनातंत्र का प्रयोग है। पद शैली में रचित ये प्रगति और मुक्तक कल्याण, गौरी, असावरी, भैरवी, केदारी धनाश्री, मल्हार, रामकली, होड़ी, मारू, विलाव आदि राग रागनियों में निबद्ध हैं। स्वामी हरिदास की संगीत परम्परा से रस–सिक्त गायन शैली का लाभ उठाते हुए और ब्रजभाषा की मँजी हुई प्रगीतात्मकता का निखार प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास ने संगीत के प्रति भी अपनी गहरी अभिरूचि और रागमयता का परिचय दिया है।

प्रस्तावना
तुलसी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी और ब्रजभाषा के काव्यग्रंथों में प्रयुक्त छंदों के अच्छे जानकार थे। इसीलिए अपनी काव्यकृतियों में उन्होंने अभिप्रेत विषय–वस्तु और भाव के अनुसार विविध प्रकार के छंदो का उपयोग किया है। ''छन्द प्रबन्ध अनेक विधान'' जैसी उक्ति के द्वारा छंदो के भेद और प्रकार के प्रति उन्होंने अपनी सजगता का संकेत भी दिया है उनके साहित्यिक जीवनवृत्त और सृजन– प्रक्रिया के क्रम विकास से ऐसा प्रतीत होता है कि ''रामचरितमानस'' की रचना से पहले एक ओर जहाँ अवधि के लोकगीतों में प्रचलित सोहर छंद का उपयोग कर वे ''रामलला नहछू'' और ''जानकी मंगल'' की रचना कर रहे थें, वहीं दूसरी ओर अपभ्रंश काव्य परम्परा के जातीय छंद दोहा और चौपाई में ''रामाज्ञा प्रश्न'' और ''वैराग्य संदीपनी'' की भी रचना कर रहे थे। इन प्रयोगों से पता चलता है कि भाखा–काव्य के लिए अपेक्षित अतः संगीत के अन्वेषण द्वारा अपने कौशल परिष्कृत कर रहे थे। जीवन की प्रौढ़ावस्था में ही ''रामचरितमानस'' की रचना में वे अपने को समर्थ और सक्षम समझकर जुटे। संस्कृत से अवधि ब्रज तक की काव्य संपदा के अनुशीलन से प्राप्त रचना विधियों और छंद कौशल का प्रमााण प्रस्तुत करने की दृष्ट से गोस्वामी जी के लिए यह जबर्दस्त चुनौती और आत्म परीक्षा की अवधि थी। संस्कृत में भी वे काव्य सृजन कर सकते हैं और संस्कृत के वर्णिक तथा मात्रिक छंदों का साधिकार उपयोग कर सकते हैं। वाल्मीकि व्यास से लेकर भवमूत्ति तक द्वारा उपयोग में लाए गए संस्कृत छंदों में वे अपनी रचनात्मक प्रतिभा के प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं, इसे सोदाहरण प्रस्तुत कर वे पंडित समाज में अपनी स्वीकृति चाहते थे ताकि यह बता सकें कि भाष–काव्य किसी अज्ञानी गँवार की रचना नहीं हैं।
तुलसीदास जनता के कवि हैं। उन्होंने दरबारी रचनाकारों और पतनशील सास्कृतिक धारा का अनुसरण न कर भाषा–काव्य को समृद्ध किया हैं। उनकी कविताओं में में ब्रज, अवधी, बुदेलखंडी, भोजपुरी के साथ–साथ अरबी और फारसी के शब्दों का भी सृजनात्मक प्रयोग हुआ है। इसके कारण उनकी कविता जन–जन में लोक प्रिय हुई। वे अपनी सच्ची विनम्रता के साथ कहते हैं कि उनकी काव्यकृति में ''जदपि कबित रस एकउ नहीं'' और वह ''मनिति भदेश'' अर्थात् एक गँवार की काव्य वाणी है। पर इसके बावजूद उनकी कविता गंगानदी की पवित्र जलधारा के समान टेढ़ी–मेढ़ी चाल से हर हरा कर बह रही है।

गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाध कीज
(मानस–कालकाण्ड पद सं.–10)

यद्यपि उनकी ''गिरा ग्राम्य'' है, पर उसकी सुन्दरता ''मनि मानिक मुकता छवि जैसी'' है।

तुलसी की सृजनशीलता काव्य कला की महानता को समझने के लिए सबसे पहले इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित करने की जरूरत है कि उन्होंने संस्कृत और फारसी की दरबारी काव्य परम्परा और लक्षण ग्रथों को तिलांजली देकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के अभ्युदयकाल की नवीन जातीयता के उन्नयन को ऐतिहासिक कार्यभार के रूप में स्वीकार किया। दरबारी रचनाकारों और अपने युग के पंडितों की पतनशील सांस्कृति धारा का अनुसरण न कर तुलसी अन्य भक्तिकालीन कवियों की तरह भाषा काव्य को समृद्ध करने का निर्णय करते हैं। अपने युग के जन साधारण की सांस्कृतिक आकांक्षा और सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। अपने युग के जनसाधारण की सांस्कृतिक आकांक्षा और सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति के दायित्व को एक चुनौती की तरह लेकर वे खुल्लम–खुल्ला नई धारा के सहयात्र बन गए। इस प्रश्न पर निर्णय में उनकी युक्ति भी गौर करने लायक है–

का भाषा, का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच।। (दोहावली–572)

सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम नित प्रति व्यवहार की टकसाल में ढ़ली हुई जनभाषा ही हो सकती है– ठीक वैसे ही जैसे शीतकाल में कंबल ही काम आता है, रेशमी वस्त्र नहीं। ''भाखा बहता नीर'' जैसी उक्ति के द्वारा कबीर ने संस्कृत के विरूद्ध तर्क दिया था, तुलसी उसी तर्क के आधार पर अपना भी निर्णय बतलाते हैं। भक्तिकालीन अन्य कवियों की तरह गोस्वपामी जी को भी पंडितों के द्वारा किये जा रहे उपहास और व्यंग्य की चिंता नहीं थी।

भाषा में लिखने के निर्णय से तुलसी को लोक संस्कृति और जनसाधारण की दैनदिन जीवनधारा में कलात्मक साधनों की अक्षय निधि प्राप्त हो गई। भारत के विभिन्न जनपदों में प्रचलित लोक–संस्कृति के विभिन्न रूपों, संस्कार गीतों, पर्व–त्योहार और विभिन्न ऋतुओं के लोक गीतों से गोस्वामी जी को वे छंद प्राप्त हुए जो अपभ्रंश काव्यों में भी व्यवहृत होकर निखर चुके थे। उपमान, रूपक, प्रतीक, बिम्ब मुहावरे, लोकोक्ति तथा दृष्टान्त भी इसी लोक–संस्कृति और ठेठ ग्रामीण जीवन से लिए गए हैं।

मध्यकालीन सामंतीय समाज के सांस्कृतिक रूढ़वादि और पतनशील मूल्य व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष का जो व्यापक आन्दोलन मराठी, बंग्ला, उड़िया असमिया समेत सभी जन भाषाओं में चल रहा था, तुलसीदास उसी आन्दोलन के एक अंग थे। डॉ. रामविलास शर्मा मानते है कि इस आन्दोलन ने सामंती बंधनों की जकड़बंदी के बरक्स भक्ति कवियों के लिए ''व्यक्ति की सापेक्ष मुक्ति'' का द्वार उन्मुक्त कर दिया।

''सामंतवाद ने मनुष्य के व्यक्तित्व को अनेक बंधनों में जकड़कर उसके विकास को रोक दिया था। जाति धर्म, सम्प्रदाय, सामाजिक आचार–विचार की श्रृंखलाओं में बँधकर मनुष्य का यह व्यक्ति स्वाधीन विकास के लिए तड़प उठता था। बिना इस व्यक्तित्व को स्वच्छंदता दिए हुए, बिना मुक्त आकाश में उड़ान भरे हुए काव्य में गेयता उत्पन्न नहीं हो सकती। ब्रजभाषा काव्य में जो अभूतपूर्व गेयता उत्पन्न हुई है, उसका सबसे बड़ा कारण इसी व्यक्तित्व की सापेक्ष मुक्ति है। सापेक्ष मुक्ति इसलिए कि सामाजिक बंधनों से यह पूर्ण मुक्त नहीं थी।''

तुलसी की कृतियों में अवधी और ब्रजभाषा के पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों रूप पाये जाते हैं। इससे उनकी भाषा–विज्ञता की व्यापकता सूचित होती है। 'रामलला नहछु' और बरबै रमायण' पूर्वी–अवधी की रचनाएँ है, 'जानकी मंगल' और 'पार्वती–मंगल' पश्चिमी अवधी की। रामचरितमानस केन्द्रीय बैसवाड़ी अवधी में लिखा गया है। 'रामाज्ञाप्रश्न' भी अवधी की रचना है। 'वैराग्य–संदीपनी', 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' तथा दोहावली की भाषा पश्चिमी, ब्रजभाषा है। उस समय मुक्तक रचना में विशेष कर गीतों और कवित सवैयों में प्रायः ब्रजभाषा का व्यवहार किया है। भक्तिकालीन कवियों के काल में मुख्यतः श्रव्य विधा ही थी। इसलिए महान कलाकार की काव्य कला की कसौटी के अन्तर्गत इस बात की माँग होती थी कि रचनाकार भाषा के ध्वनि प्रवाह और गति को पहचाने। रचना श्रव्यता के लिए यह आवश्यक माना जाता है। इस कसौटी पर खड़ा उतरने वाला काव्य जन–जन का कंठाहार बन जाता है और सदियों तक पीढ़ी–दर पीढ़ी लोकस्मृति में अक्षुण्य पड़ा रहता है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी गोस्वामी जी के काव्य की विशेषता का विवेचन करते हुए कहते हैं– ''तुलसी की पक्तियाँ लोगों को बहुत याद हैं। वे उत्तरी भारत के गाँवों, पुरबों, खेतों, खलिहानों, चारागाहों, चौपालों में दूब, जल धूल, फसल की भाँति बिखरी हैं–इसे कहना आवश्यक है। अवश्य ही इसका कारण उन पंक्तियों की सदर्भवत्ता और मार्मिकता है, लेकिन इसमें तुलसी की पंक्तियों के ध्वनि प्रवाह का भी बहुत योगदान है। तुलसी की पंक्तियों में वह रपटन और फिसलन है कि उनका एक शब्द याद पड़ जाए तो पूरी पंक्ति अपने आप ही स्मृति में उदित हो आती है। इसका कारण है पंक्तियों में प्रयुक्त शब्दों की ध्वनि मैत्र।'' जैसे–

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनाथकहिं भजहिं जीवन ते धन्य।।
केवह निसिचय विहगमृग किए साधु सनमनि।
तुलसी रघुबर की कृपा सकल सुमंल खनि।।

तानसेन, बैजू, स्वामी हरिदास, लाल खाँ आदि के द्वारा भारतीय संगीत परम्परा का परिष्कार हुआ, उसे नया रूप मिला। हिन्दुस्तानी संगीत की इस लोकाश्रित जातीय परम्परा के विकास में हिन्दू–मुस्लिम संगीतकार योगदान दे रहे थे। बारहवीं–तेरहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक संतों सूफियों, और भक्तों के पदों की गायन परम्परा पर संगीत के राग और ताल की गहरी छाप है। यह मूलतः लोक संगीत है जिसे कभी–कभी मुगल दरबार में या हिन्दू–मुस्लिम रियासतों में भी आश्रय प्राप्त हो जाता था। आचार्य शुक्ल सूरदास के प्रसंग में पहले से चली आ रही जिस गीत परम्परा का उल्लेख करते हैं, वह वस्तुतः सिर्फ ब्रज भाषा में ही नहीं है मैथिली, अवधी, खड़ीबोली पंजाबी, मराठी, बंगला आदि में भी है और–इस गीत परम्परा का जातीय लोकसंगीत के रूप में अलग–अलग प्रसार हो रहा था। रामविलास शर्मा का अनुमान है ''संतो के पद लोकगीतों का विकास है। दक्षिण की शास्त्रीय पद्धति के गायक त्यागराज और पुरंदरदास के पद गाते हैं, उत्तर की शास्त्रीय पद्धति के गायक सूर, तुलसी और मीरा के पद गाते है। यही नहीं, कुछ गायिकाएँ शास्त्रीय गायन का समापन कजरी या किसी अन्य संगीत से करती हैं और वादक भी अपने शास्त्रीय वादन का समापन कभी किसी लोकधुन से करते हैं। इस तरह वे उस आदि स्त्रों को याद कर लेते हैं जिसने संतो के गायन और शास्त्रीय गायन दोनों को जन्म दिया था।''

तुलसी ने जिस गीतिकाव्य धारा को प्रवाहित किया वह भारत की एक सुदीर्य गीतिकाव्य से संबंध रखती है इस परम्परा का विकास वैदिक युग से प्रारम्भ है। 'सामवेद' गीतिकाव्य का मूल स्रोत है। इसमें मधुरता, त्वरा गेयता अदि सभी गुण विद्यमान हैं। संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य का पूर्ण विकास 'कालीदास' के ऋतुसंहार और मेघदूत में दिखाई देता है। सूर की गीतिकाव्य ने तुलसी को बहुत प्रभावित किया। तुलसी द्वारा रचित 'विनय पत्रिका', 'गीतावली', 'श्रीकृष्ण गीतावली' एवं 'कवितावली' प्रगीत काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृतियाँ है।

तुलसी के गीतों में शास्त्रीय संगीत का पूर्ण रूपेण निर्वाह हुआ है। 'विनयपत्रिका' और 'गीतावली' में कई प्रकार की राग–रागिनियों का प्रयोग हुआ है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए

रागों का यथोचित उपयोग किया गया है। आसावरी, के दाश, कन्हार, सोरठ, विकाल, जैतश्री आदि राग तुलसी को बहुत प्रिय थे। तुलसी ने वीर और रौद्र के लिए मारू तथा करूण एवं श्रृंगार के लिए आसावरी राग का प्रयोग 'गीतावली' के कई पदों में किया है। 'श्रीकृष्ण गीतावली' में गोपियों की विरह–व्यथा का कुशल चित्रण सौरव राग में हुआ है। इसी राग में दैन्यचित्रण 'विनयपत्रिका' में किया गया है। संगीत शास्त्र की दृष्टि से तुलसी के गीत शब्द प्रधान अधिक हैं स्वर प्रधान कर्म।

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हौं।
साधन धाम बिबधु दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हौं।।
कोटिहु मुख कहि जात न प्रभु के एक–एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और मांगिहौं दीजै परम उदार।।
विषय–वारि मन–मीन भिन्न नहिं होत कबहुं पलएक।
तातै सहौ विपति अति दारून जनमत जोनि अनेक।।
कुपा डोरि वंसी पद अंकुस परम प्रेम मृदु चारो।
एहि विधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो।।
(विनयपत्रिका)

निष्कर्ष

तुलसी ने अपने काव्य में दोहा, चौपाई, सौरठ, सवैया, कवित आदि छन्दो का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य शैलियों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। अपने समय और समाज के लोकभाषा का प्रयोग कर अपने कृति को उजर–अमर बना दिया।

तुलसी ने बिम्ब योजना के द्वारा अपने काव्य को चित्रात्मक एवं लोकग्राही बनाने का सफल प्रयास किया है। 'विनय पत्रिका' के पदों को संगीत के विभिन्न राग–रागनियों में गाया जा सकता है। उनका सम्पूर्ण काव्य गेयता के गुण से सम्पन्न है। चौपाइयों को गाकर प्रस्तुत करने की अनेक शैलियां हैं। जिनके कारण इसका माधुर्य और भी बढ़ गया है। निश्चय ही तुलसी की काव्यकला में मार्मिक, प्रभावोत्पादकता स्वाभाविकता उदात्तता एवं कलात्मकता विद्यमान है। अतः तुलसी ने मध्यकाल में प्रचलित काव्य सृष्टि के तीनों रूप विधानों प्रबंध मुक्तक और प्रगीत को अपना कर अपने संपूर्ण काव्यकृति को अमर बना दिया।

संदर्भ

1. रामचरितमानस बालकाण्ड, पद सं.–10
2. दोहावली पद सं.–522
3. भाषा युगबोध और कविता– पृ.–48
4. लोकवादी तुलसी पृ.–139
5. भारतीय साहित्य की भूमिका– पृ.–190
6. दोहावली, पद सं.– 12, 13
7. विनयपत्रिका के गेयपद
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– त्रीवेणी
9. तुलसीदास– डॉ. माता प्रसाद गुप्त– हिन्दी परिषद प्रकाशन